प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेश

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य–अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेश

कृष्णकृपामूर्ति
श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप	राजविद्या : ज्ञान का राजा
श्रीमद्भागवतम् (१८ भागों में)	जीवन का स्रोत जीवन
श्रीचैतन्य-चरितामृत (७ भागों में)	जन्म-मृत्यु से परे
पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण	कर्मयोग
भक्तिरसामृतसिन्धु	रसराज श्रीकृष्ण
भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत	प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षा
श्रीउपदेशामृत	कृष्ण की ओर
श्रीईशोपनिषद्	कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा	कृष्णभावनामृत : एक अनुपम उपहार
भागवत का प्रकाश	पुनरागमन : पुनर्जन्म का विज्ञान
आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान	योगपथः आधुनिक युग के लिए योग
कृष्णभावनामृत : सर्वोत्तम योगपद्धति	योग की पूर्णता
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर	नारद भक्ति-सूत्र
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत	गीतासार
	गीतार गान (बंगला)
महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ	भगवद्दर्शन पत्रिका (संस्थापक)

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के जीवनकाल के पश्चात् उनके उपदेशों से संकलित किये हुए ग्रंथ :

मृत्यु की पराजय	ज्ञान की तलवार
आत्मा का प्रवास	अध्यात्म और २१वीं सदी
प्रकृति के नियम	हरे कृष्ण चुनौती

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई ४०० ०४९.

ये पुस्तकें हरे कृष्ण केन्द्रों पर भी उपलब्ध हैं। कृपया अपने निकटस्थ केन्द्र से सम्पर्क करें।

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

सर्वाधिक प्रिय पुरुष

यह पुस्तिका १९६८ में श्रीमद्भागवतम् के सातवें स्कन्ध के छठे अध्याय पर श्रील प्रभुपाद द्वारा दी गई वार्ता-माला पर आधारित है।

आज मैं आपलोगों को एक बालक भक्त की कथा सुनाऊँगा जिनका नाम प्रह्लाद महाराज था। वे घोर नास्तिक परिवार में जन्मे थे।

इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं—असुर तथा देवता। उनमें अन्तर क्या है? मुख्य अन्तर यह है कि देवतागण भगवान् के प्रति अनुरक्त रहते हैं जबकि असुरगण नास्तिक होते हैं। वे ईश्वर में इसलिए विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे भौतिकतावादी होते हैं। मनुष्यों की ये दोनों श्रेणियाँ इस संसार में सदैव विद्यमान रहती हैं। कलियुग (कलह का युग) होने से सम्प्रति असुरों की संख्या बढ़ी हुई है किन्तु यह वर्गीकरण सृष्टि के प्रारम्भ से चला आ रहा है। आपलोगों से मैं जिस घटना का

वर्णन करने जा रहा हूँ वह सृष्टि के कुछ लाख वर्षों बाद घटी।

प्रह्लाद महाराज सर्वाधिक नास्तिक एवं भौतिक रूप से सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति के पुत्र थे। चूँकि उस समय का समाज भौतिकतावादी था अतएव इस बालक को भगवान् के यशोगान का अवसर ही नहीं मिलता था। महात्मा का लक्षण यह होता है कि वह भगवान् की महिमा का प्रसार करने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहता है। उदाहरणार्थ, जीसस क्राइस्ट ईश्वर की महिमा का प्रसार करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे किन्तु आसुरी लोगों ने उन्हें गलत समझा और उन्हें सूली पर चढ़ा दिया।

जब प्रह्लाद महाराज पाँच वर्ष के बालक थे, तो उन्हें पाठशाला भेजा गया। जैसे ही मनोरंजन का अंतराल आता और शिक्षक बाहर चला जाता, वे अपने मित्रों से कहते, "मित्रों! आओ। हम कृष्णभावनामृत के विषय में चर्चा करें।" यह दृश्य *श्रीमद्भागवतम्* के सप्तम स्कंध के छठे अध्याय में वर्णित है। भक्त प्रह्लाद कहते हैं, "मित्रों! यह बाल्यावस्था ही कृष्णभावनामृत अनुशीलन करने का उचित समय है।" और उनके बालमित्र उत्तर देते हैं, "ओह! हम तो खेलेंगे। हम कृष्णभावनामृत क्यों ग्रहण करें?" प्रत्युत्तर में प्रह्लाद महाराज कहते

हैं, "यदि तुम लोग बुद्धिमान् हो, तो बाल्यावस्था से ही *भागवत-धर्म* प्रारम्भ करो।"

श्रीमद्भागवतम् भागवत-धर्म प्रस्तुत करता है अर्थात् यह ईश्वर विषयक वैज्ञानिक ज्ञान तक ले जाता है। *भागवत* का अर्थ है, "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्" और *धर्म* का अर्थ है, "विधि-विधान।" यह मानव जीवन अति दुर्लभ है। यह एक महान् सुयोग है। इसीलिए प्रह्लाद कहते हैं, "मित्रों! तुम लोग सभ्य मनुष्यों के रूप में उत्पन्न हुए हो, अतः तुम्हारा यह मनुष्य-शरीर क्षणभंगुर होते हुए भी महानतम सुयोग है।" कोई भी व्यक्ति अपनी जीवन-अवधि नहीं जानता। ऐसी गणना की जाती है कि इस युग में मनुष्य-शरीर एक सौ वर्षों तक जीवित रह सकता है। किन्तु जैसे जैसे कलियुग आगे बढ़ता जाता है, जीवन की अवधि, स्मृति, दया, धार्मिकता तथा अन्य ऐसी ही विभूतियाँ घटती जाती हैं। अतएव इस युग में दीर्घायु अनिश्चित है।

यद्यपि मनुष्य का स्वरूप क्षणिक है, फिर भी इसी मनुष्य रूप में आप जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। वह सिद्धि क्या है? सर्वव्यापक भगवान् को जान लेना। अन्य योनियों में यह सम्भव नहीं है। चूँकि हम क्रमिक विकास द्वारा

यह मनुष्य स्वरूप प्राप्त करते हैं इसलिए यह दुर्लभ अवसर है। प्रकृति के नियमानुसार आपको अन्ततः मनुष्य-शरीर दिया जाता है जिससे आप आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करके भगवद्धाम वापस जा सकें।

जीवन का चरम लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु या कृष्ण हैं। बाद के एक श्लोक में प्रह्लाद महाराज कहते हैं, "इस भौतिक जगत् के जो लोग भौतिक शक्ति द्वारा मोहित हो जाते हैं, वे यह नहीं जानते कि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य क्या है? क्यों? क्योंकि वे भगवान् की चकाचौंध करने वाली बहिरंगा शक्ति द्वारा मोहित हो चुके हैं। वे यह भूल चुके हैं कि जीवन तो सिद्धि के चरम लक्ष्य भगवान् विष्णु को समझने के लिए एक सुअवसर है।" विष्णु या ईश्वर को समझने के लिए हमें क्यों अतीव उत्सुक होना चाहिए? प्रह्लाद महाराज कारण समझाते हैं, "विष्णु सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति हैं। हम *यह* भूल चुके हैं।" हम सभी किसी प्रिय मित्र की खोज में रहते हैं—हर व्यक्ति इसी प्रकार खोज करता है। पुरुष स्त्री के साथ प्रिय मैत्री करना चाहता है और स्त्री पुरुष से मैत्री करना चाहती है। या फिर एक पुरुष अन्य पुरुष को खोजता है और एक स्त्री अन्य स्त्री को खोजती है। हर व्यक्ति किसी न किसी प्रिय, मधुर मित्र की

तलाश में रहता है। ऐसा क्यों? क्योंकि हम ऐसे प्रिय मित्र का सहयोग चाहते हैं जो हमारी सहायता कर सके। यह जीवन-संघर्ष का अंग है और यह स्वाभाविक है। किन्तु हम यह नहीं जानते कि हमारे सर्वाधिक प्रिय मित्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु हैं।

जिन्होंने *भगवद्गीता* का अध्ययन किया है, उन्हें पाँचवें अध्याय में यह उत्तम श्लोक मिला होगा, "यदि आप शान्ति चाहते हैं, तो आपको स्पष्ट रूप से यह समझना होगा कि इस लोक की तथा अन्य लोकों की हर वस्तु कृष्ण की सम्पत्ति है, वे ही हर वस्तु के भोक्ता हैं एवं वे ही हर एक के परम मित्र हैं। तो फिर तपस्या क्यों की जाये? क्यों धार्मिक अनुष्ठान किये जाएं? क्यों दान दिया जाये? ये सारे कार्य भगवान् को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और किसी निमित्त नहीं है। और जब भगवान् प्रसन्न होते हैं तो आपको फल मिलता है। आप चाहे उच्चतर भौतिक सुख की कामना करते हों या आध्यात्मिक सुख की; आप चाहे इस लोक में श्रेष्ठतर जीवन बिताना चाहते हों या अन्य लोकों में—यदि आप भगवान् को प्रसन्न कर लेते हैं तो आप उनसे मनवांछित फल प्राप्त कर सकेंगे। इसीलिए वे अत्यन्त निष्ठावान् मित्र हैं। किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी कोई

वस्तु नहीं चाहता जो भौतिक रूप से कलुषित हो।

भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं कि पुण्य कर्मों से मनुष्य सर्वोच्च भौतिक लोक अर्थात् ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है जहाँ पर जीवन की अवधि करोड़ों वर्ष की है। आप वहाँ की जीवन-अवधि की गणना नहीं कर सकते, आपका सारा गणित का ज्ञान निष्फल हो जाता है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि ब्रह्मा का जीवन इतना दीर्घ है कि हमारे ४,३२,००,००,००० वर्ष उनके बारह घंटों के तुल्य हैं। कृष्ण कहते हैं, "तुम चींटी से लेकर ब्रह्मा तक कोई भी पद इच्छानुसार प्राप्त कर सकते हो पर वहाँ भी जन्म-मरण की पुनरावृत्ति होगी। किन्तु यदि तुम कृष्णभावनामृत का अभ्यास करके मेरे पास आते हो, तो तुम्हें इस कष्ट-प्रद भौतिक जगत् में पुनः नहीं आना होगा।"

प्रह्लाद महाराज यही बात कहते हैं, "हमें अपने सर्वाधिक प्रिय मित्र, परम भगवान् कृष्ण की खोज करनी चाहिए" वे हमारे सर्वाधिक प्रिय मित्र क्यों हैं? वे स्वाभाविक रूप से प्रिय हैं। क्या आपने कभी विचार किया है कि आप किसे सर्वाधिक प्रिय वस्तु मानते हैं? आप स्वयं ही वह सर्वाधिक प्रिय वस्तु हैं। उदाहरणतः मैं यहाँ बैठा हूँ किन्तु यदि आग लगने की चेतावनी दी जाये, तो मैं तुरन्त अपनी रक्षा के विषय में

सोचूँगा। मैं सर्वप्रथम सोचूँगा कि मैं अपने आप को किस तरह बचा सकता हूँ। तब हम अपने मित्रों और अपने सम्बन्धियों तक को भूल जाते हैं और यही भाव रहता है कि सर्वप्रथम मैं अपने को बचा लूँ। आत्म-रक्षा प्रकृति का सर्वप्रथम नियम है।

स्थूल दृष्टिकोण से *आत्मा,* "स्वयं" शब्द का अर्थ शरीर है किन्तु सूक्ष्म अर्थ में मन या बुद्धि ही आत्मा है। और वस्तुतः आत्मा का अर्थ आत्मा ही है। स्थूल अवस्था में हम अपने शरीर की रक्षा करने तथा उसे तुष्ट करने में अत्यधिक रुचि लेते हैं किन्तु सूक्ष्मतर अवस्था में हम मन तथा बुद्धि को तुष्ट करने में रुचि लेते हैं। किन्तु मानसिक तथा बौद्धिक स्तर के ऊपर, जहाँ का वातावरण अध्यात्मीकृत है, हम यह समझ सकते हैं कि *अहं ब्रह्मास्मि* अर्थात् "मैं यह मन, बुद्धि या शरीर नहीं हूँ—मैं तो आत्मा हूँ—भगवान् का भिन्नांश।" यही है वास्तविक समझ या ज्ञान का स्तर या पद।

प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि समस्त जीवों में से विष्णु परम हितैषी हैं। इसलिए हम सभी उनकी खोज में लगे हैं। जब बालक रोता है, तो वह क्या चाहता है? अपनी माता। किन्तु इसे व्यक्त करने के लिए उसके पास कोई भाषा नहीं होती। स्वभावतः उसके पास उसका शरीर है जो उसकी माता के शरीर

से उत्पन्न होता है अतएव अपनी माता के शरीर से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। बालक अन्य किसी स्त्री को नहीं चाहेगा। बालक रोता है किन्तु जब वह स्त्री, जो बालक की माँ होती है, आती है और उसे गोद में उठा लेती है तो वह बालक शांत हो जाता है। यह सब व्यक्त करने के लिए उसके पास कोई भाषा नहीं होती किन्तु अपनी माता से उसका सम्बन्ध प्रकृति का नियम है। इसी तरह हम स्वाभाविक रूप से शरीर की रक्षा करना चाहते हैं। यह आत्म-संरक्षण है। यह जीव का प्राकृतिक नियम है जिस प्रकार भोजन करना एक प्राकृतिक नियम है और सोना भी प्राकृतिक नियम है। तो मैं शरीर की रक्षा क्यों करूँ? क्योंकि इस शरीर के भीतर आत्मा है।

यह आत्मा क्या है? यह आत्मा भगवान् का अंश है। जिस तरह हम हाथ या अँगुली की रक्षा करना चाहते हैं क्योंकि वह पूरे शरीर का अंग है, उसी तरह हम अपने को बचाना चाहते हैं क्योंकि यही भगवान् की रक्षा-विधि है। भगवान् को रक्षा की आवश्यकता नहीं होती किन्तु यह तो उनके प्रति हमारे प्रेम की अभिव्यक्ति है जो अब विकृत हो चुकी है। अँगुली तथा हाथ सारे शरीर के हितार्थ काम करने के लिए हैं। जैसे ही मैं चाहता हूँ कि मेरा हाथ यहाँ आये तो वह तुरन्त आ जाता है और

जैसे ही मैं चाहता हूँ कि अँगुली मृदंग बजाये, वह बजाने लगती है। यह प्राकृतिक स्थिति है। इसी तरह हम अपनी शक्ति को भगवान् की सेवा में लगाने के लिए उनकी खोज करते हैं किन्तु माया शक्ति के प्रभाव के कारण हम इसे जान नहीं पाते। यही हमारी भूल है। मनुष्य जीवन में हमें यह सुयोग मिला है कि हम अपनी वास्तविक स्थिति को समझें। चूँकि आप सभी मनुष्य हैं इसीलिए आप सभी कृष्णभावनामृत सीखने यहाँ आये हैं जो कि आपके जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। मैं कुत्ते-बिल्लियों को यहाँ बैठने के लिए आमंत्रित नहीं सकता। यही अन्तर है मनुष्यों तथा कुत्ते-बिल्लियों में। मनुष्य जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता को समझ सकता है। किन्तु यदि वह इस सुअवसर को खो देता है, तो इसे महान् अनर्थ समझना चाहिए।

प्रह्लाद महाराज कहते हैं, "ईश्वर सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति हैं। हमें उनकी खोज करनी चाहिए।" तब जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के विषय में क्या होगा? प्रह्लाद महाराज उत्तर देते हैं, "तुम लोग इन्द्रियतृप्ति के प्रति आसक्त हो किन्तु इन्द्रियतृप्ति तो इस शरीर के संसर्ग से स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।" चूँकि सुअर को एक विशेष प्रकार का शरीर मिला है

अतएव उसकी ईन्द्रियतृप्ति मल भक्षण से होती है जो आप सबों के लिए सबसे घृणित वस्तु है। मल त्याग करने के बाद दुर्गन्ध से बचने के लिए आप तत्काल स्थान त्याग देते हैं लेकिन सुअर प्रतीक्षा करता रहता है। जैसे ही आप मल त्यागेंगे, वह तुरन्त उसका आनन्द उठाता है। अतएव शरीर के विविध प्रकारों के अनुसार इन्द्रियतृप्ति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। इन्द्रियतृप्ति प्रत्येक देहधारी को प्राप्त होती है। ऐसा कभी मत सोचें कि मल खाने वाले सुअर दुःखी हैं। नहीं। वे मल भक्षण कर मोटे हो रहे हैं। वे अत्यन्त सुखी हैं।

दूसरा उदाहरण ऊँट का है। ऊँट कँटीली झाड़ियों के प्रति आसक्त होता है। क्यों? क्योंकि जब वह कँटीली झाड़ियाँ खाता है तो झाड़ियाँ उसकी जीभ को काट देती हैं, जिससे रक्त चूने लगता है और वह अपने ही रक्त का आस्वादन करता है। तब वह सोचता है, "मैं आनन्द पा रहा हूँ।" यह इन्द्रियतृप्ति है। यौन जीवन भी ऐसा ही है। हम अपने ही रक्त का आस्वादन करते हैं और सोचते हैं कि हम आनन्द लूट रहे हैं। यही हमारी मूर्खता है।

इस भौतिक जगत् में जीव एक आध्यात्मिक प्राणी है, किन्तु उसमें भोग करने की अर्थात् भौतिक शक्ति का शोषण करने की

प्रवृत्ति होती है इसलिए उसे शरीर प्राप्त हुआ है। जीवों की ८४,००,००० योनियाँ हैं और हर योनि का पृथक् शरीर है। शरीर के अनुसार ही उनमें विशिष्ट इन्द्रियाँ होती हैं जिनसे वे किसी विशेष आनन्द को भोग सकते हैं। मान लीजिये कि आपको एक कँटीली झाड़ी दे दी जाये और कहा जाय, "देवियों और सज्जनों! यह अत्युत्तम भोजन है। यह ऊँटों द्वारा प्रमाणित है। यह अति उत्तम है।" तो क्या आप इसे खाना पसन्द करेंगे? "नहीं, आप यह क्या व्यर्थ की वस्तु मुझे दे रहे हैं?" आप कहेंगे, चूँकि आपको ऊँट से भिन्न शरीर मिला हुआ है अतएव आपको कँटीली झाड़ी नहीं भाती। किन्तु यही झाड़ी ऊँट को दे दी जाये तो वह सोचेगा कि यह तो अत्युत्तम आहार है।

यदि सुअर तथा ऊँट बिना किसी विकट संघर्ष के इन्द्रियतृप्ति का भोग कर सकते हैं तो हम मनुष्य क्यों नहीं कर सकते? हम कर सकते हैं किन्तु यह हमारी चरम उपलब्धि नहीं होगी। चाहे कोई सुअर हो या ऊँट अथवा मनुष्य, इन्द्रियतृप्ति भोगने की सुविधाएँ प्रकृति द्वारा प्रदान की जाती हैं। अतएव वे सुविधाएँ जो आपको प्रकृति के नियम द्वारा मिलनी ही हैं उनके लिए आप श्रम क्यों करें? प्रत्येक योनि में शारीरिक माँगों की तुष्टि की व्यवस्था प्रकृति द्वारा की जाती है। इस तृप्ति की

व्यवस्था उसी तरह की जाती है जिस तरह दुःख की व्यवस्था रहती है। क्या आप चाहेंगे कि आपको ज्वर चढ़े? नहीं। ज्वर क्यों चढ़ता है? मैं नहीं जानता। किन्तु यह चढ़ता ही है, है न! क्या आप इसके लिए प्रयास करते हैं? नहीं। तो यह चढ़ता कैसे है? प्रकृति से। यही एकमात्र उत्तर है। यदि आपका कष्ट प्रकृति द्वारा प्रदत्त है तो आपका सुख भी प्रकृतिजन्य है। इसके विषय में चिन्ता मत करें। यही प्रह्लाद महाराज का आदेश है। यदि आपको बिना प्रयास के ही जीवन में कष्ट मिलते हैं, तो सुख भी बिना प्रयास के प्राप्त होगा।

तो इस मनुष्य जीवन का वास्तविक प्रयोजन क्या है? "कृष्णभावनामृत का अनुशीलन।" अन्य सारी वस्तुएँ प्रकृति के नियमों द्वारा, जो कि अन्ततः ईश्वर का नियम है, प्राप्त हो जायेंगी। यदि मैं प्रयास न भी करूँ तो मुझे अपने विगत कर्म तथा शरीर के कारण, जो भी मिलना है, वह प्रदान किया जायेगा। अतएव आपकी मुख्य चिन्ता मनुष्य जीवन के उच्चतर लक्ष्य को खोज निकालने की होनी चाहिए।

हम अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं

अतएव हमें अपनी इन्द्रियों को भौतिक सुख बढ़ाने के लिए प्रेरित करने के इच्छुक न बनकर कृष्णभावनामृत का अभ्यास करके आध्यात्मिक सुख पाने का प्रयास करना चाहिए। जैसा कि प्रह्लाद महाराज कहते हैं, "यद्यपि इस मानव शरीर में तुम्हारा जीवन क्षणिक है किन्तु है अत्यन्त मूल्यवान्। अतएव अपने भौतिक इन्द्रियभोग को बढ़ाने का प्रयास करने की अपेक्षा तुम्हारा कर्तव्य यह है कि अपने कार्यों को किसी न किसी तरह कृष्णभावनामृत से जोड़ो।"

मनुष्य शरीर से ही उच्चतर बुद्धि आती है। चूँकि हमें उच्चतर चेतना मिली है इसलिए जीवन में हमें उच्चतर आनन्द के लिए प्रयत्न करना चाहिए—यह आध्यात्मिक आनन्द है। इस आध्यात्मिक आनन्द को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की सेवा में लीन रहे क्योंकि वे ही मुक्ति रूपी आनन्द प्रदान करने वाले हैं। हमें अपना ध्यान कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने में लगाना चाहिए जो हमारा इस भौतिक जगत् से उद्धार करने वाले हैं।

किन्तु क्या हम इस जीवन में भोग नहीं कर सकते और अगले जीवन में कृष्ण की सेवा में अपने को नहीं लगा सकते? प्रह्लाद महाराज का उत्तर है, "अभी हम भौतिक बन्धन में हैं। इस समय मुझे यह शरीर मिला है किन्तु कुछ वर्षों बाद मैं यह शरीर त्याग कर अन्य शरीर धारण करने के लिए बाध्य होऊँगा। एक बार एक शरीर पा लेने पर तथा अपने शरीर की इन्द्रियों के आदेशानुसार भोग करने पर हम ऐसी इन्द्रियतृप्ति से दूसरे शरीर को तैयार करते हैं और यह दूसरा शरीर अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त होता है।" इसकी कोई प्रतिभूति नहीं हैं कि आपको मनुष्य शरीर ही मिले। यह तो आपके कर्म पर निर्भर करेगा। यदि आप देवता की तरह कर्म करेंगे, तो आपको देवता का शरीर प्राप्त होगा और यदि आप कुत्ते की तरह कर्म करेंगे, तो कुत्ते का शरीर मिलेगा। मृत्यु के समय आपका भाग्य आपके हाथ में नहीं होता—यह प्रकृति के हाथ में होता है। यह हमारा कार्य नहीं कि हम यह मनोकल्पना करें कि हमें अगला कौनसा भौतिक शरीर मिलेगा। इस समय तो हम इतना ही समझ लें कि यह मनुष्य शरीर हमारी आध्यात्मिक चेतना अर्थात् हमारे कृष्णभावनामृत को विकसित करने का सुअवसर है। इसलिए हमें तुरन्त कृष्ण की सेवा में

संलग्न हो जाना चाहिए। तभी हम प्रगति कर सकेंगे।

परन्तु हम कब तक ऐसा करें? जब तक यह शरीर कर्म कर सकता है तब तक। हम यह नहीं जानते कि यह कब काम करना बन्द कर देगा। महान् संत परीक्षित महाराज को तो सात दिन का समय मिला था, "एक सप्ताह में तुम्हारा शरीर-पात हो जायेगा।" किन्तु हम नहीं जानते कि हमारा शरीर-पात कब हो जायेगा। हम जब भी सड़क पर होते हैं तो अकस्मात् दुर्घटना हो सकती है। हमें सदैव तैयार रहना चाहिए। मृत्यु सदैव उपस्थित रहती है। हमें आशावादिता से यह नहीं सोचना चाहिए कि हर कोई मर रहा है किन्तु मैं तो जीवित रहूँगा। यदि हर कोई मरता है तो फिर आप क्यों जीवित रहेंगे? आपके पितामह मरे हैं, प्रपितामह मरे हैं, अन्य सम्बन्धीगण भी मरे हैं तो फिर आप क्यों जीवित रहेंगे? आप भी मरेंगे। आपकी सन्तानें भी मरेंगी। अतएव इसके पूर्व कि मृत्यु आए, जब तक यह मानव बुद्धि है, हम कृष्णभावनामृत में जुट जाएँ। प्रह्लाद महाराज की यही संस्तुति है।

हम नहीं जानते कि यह शरीर कब काम करना बन्द कर दे अतएव हमें तुरन्त ही कृष्णभावनामृत में प्रवृत्त होकर उसी के अनुसार कर्म करना चाहिए। "किन्तु यदि मैं तुरन्त कृष्ण-

भावनामृत में लग जाऊँ, तो मेरी जीविका कैसे चलेगी?" इसकी व्यवस्था है। मुझे आप लोगों से अपने एक शिष्य के विश्वास के विषय में वर्णन करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। उससे असहमत एक अन्य शिष्य ने कहा, "तुम इसकी देखरेख नहीं करते कि प्रतिष्ठान को कैसे चलाया जाये।" इस पर उसने उत्तर दिया "अरे! कृष्ण सब प्रदान करेंगे।" यह अति उत्तम विचार है। इसे सुनकर मैं हर्षित हुआ। यदि कुत्ते, बिल्ली तथा सुअर भोजन पा सकते हैं, तो क्या कृष्ण हमारे भोजन का भी प्रबन्ध नहीं करेंगे? यदि हम पूरी तरह कृष्णभावनाभावित हों और उनकी सेवा करते हों। क्या कृष्ण कृतघ्न हैं? नहीं।

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! मैं सभी पर समभाव रखता हूँ। मैं किसी से ईर्ष्या नहीं करता और न ही कोई मेरा विशेष मित्र है, किन्तु जो कृष्णभावनामृत में संलग्न रहता है उसका मैं विशेष ध्यान रखता हूँ।" चूँकि एक छोटा बालक अपने माता-पिता की कृपा पर पूरी तरह आश्रित रहता है, अतएव वे उस बालक पर विशेष ध्यान रखते हैं। यद्यपि माता-पिता सारे बालकों पर समान रूप से दयालु होते हैं किन्तु वे छोटे छोटे बालक, जो सदैव "माँ, माँ" चिल्लाते रहते हैं, उन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। "क्या है मेरे लाल?

बोलो?" यह स्वाभाविक है।

यदि आप उन कृष्ण पर पूर्णतया आश्रित हैं, जो कुत्तों पक्षियों और पशुओं को—८४,००,००० योनियों के जीवों को—भोजन प्रदान करते हैं, तो फिर वे आपको भोजन क्यों नहीं देंगे? यह धारणा समर्पण का लक्षण है। किन्तु हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि कृष्ण मुझे भोजन दे रहें हैं अतः मैं अब सो जाऊँगा। आपको बिना भय के कार्य करना है। आपको कृष्ण के लालन-पालन तथा संरक्षण पर पूर्ण विश्वास रखते हुए कृष्ण-भावनामृत में पूरी तरह से लग जाना चाहिए।

आइये, हम अपनी आयु की गणना करें। इस युग में ऐसा कहा जाता है कि हम अधिक से अधिक एक सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। पहले सत्य-युग में, सत्त्वगुण के युग में लोग १ लाख वर्षों तक जीवित रहते थे। अगले युग त्रेता में वे १० हजार वर्षों तक जीते थे और उसके बाद वाले युग, द्वापर में १ हजार वर्षों तक। अब इस कलियुग में यह अनुमान १०० वर्ष का है। किन्तु जैसे जैसे कलियुग अग्रसर होगा, हमारी आयु और भी घटती जायेगी। यह हमारी आधुनिक सभ्यता की तथाकथित उन्नति है। हमें इसका बड़ा गर्व रहता है कि हम सुखी हैं और अपनी सभ्यता में सुधार ला रहे हैं।

किन्तु इसका परिणाम यह है कि हम भौतिक जीवन का भोग करने का प्रयास तो करते हैं किन्तु हमारी आयु कम होती जा रही है।

यदि हम यह मान लें कि एक मनुष्य एक सौ वर्षों तक जीवित रहता है और यदि उसे आध्यात्मिक जीवन का कोई ज्ञान नहीं है, तो उसका आधा जीवन रात में सोने तथा संभोग करने में बीत जाता है। उसकी रुचि अन्य किसी कार्य में नहीं रहती। और दिन के समय वह क्या करता है? "धन कहाँ है? धन कहाँ है? मुझे इस शरीर को बनाये रखना है।" और जब उसके पास धन आ जाता है, तो वह कहता है कि क्यों न मैं इसका उपयोग अपनी पत्नी और बच्चों के लिए करूँ? तो फिर उसकी आध्यात्मिक अनुभूति कहाँ रही? रात में वह अपना समय सोने में तथा संभोग करने में बिताता है और दिन में धन अर्जित करने के लिए वह कठोर श्रम में समय बिताता है। क्या जीवन में उसका यही उद्देश्य है? ऐसा जीवन कितना भयावह है!

साधारण व्यक्ति बालपन में भ्रमित रहता है और निरर्थक खेल खेलता रहता है। आप बीस वर्षों तक इसी तरह करते रह सकते हैं। तत्पश्चात् जब आप वृद्ध होते हैं, तो फिर से

बीस वर्षों तक कुछ नहीं कर सकते। जब व्यक्ति वृद्ध हो जाता है, तो उसकी इन्द्रियाँ काम नहीं कर सकतीं। आपने अनेक वृद्ध व्यक्तियों को देखा होगा; वे विश्राम करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते। अभी अभी हमें अपने एक शिष्य का पत्र मिला है जिसमें सूचित किया गया है कि उसकी दादी को लकवा मार गया है और वह गत साढ़े तीन वर्षों से कष्ट भोग रही है। अतः वृद्धावस्था में अस्सी वर्ष की आयु होते ही सारा काम ठप्प हो जाता है। इसलिए प्रारम्भ से लेकर बीस वर्ष की आयु तक सारे का सारा समय नष्ट हो जाता है और यदि आप एक सौ वर्ष तक जीवित भी रहें, तो जीवन की अन्तिम अवस्था के बीस वर्ष भी नष्ट हो जाते हैं। इस तरह आपके जीवन के चालीस वर्ष ऐसे ही नष्ट हो जाते हैं। बीच की आयु में यौन-क्षुधा इतनी प्रबल होती है कि इसमें भी बीस वर्ष नष्ट हो जाते हैं। इस तरह बीस, फिर बीस, तब बीस कुल साठ वर्ष नष्ट हो जाते हैं। जीवन का यह विश्लेषण प्रह्लाद महाराज द्वारा दिया गया है। हम अपने जीवन को कृष्णभावनामृत में उन्नति करने में न लगाकर उसे चौपट कर रहे हैं।

पारिवारिक मोह

प्रह्लाद महाराज ने अपने मित्रों से कहा, "तुम्हें तुरन्त ही कृष्णभावनामृत शुरू कर देना चाहिए।" सारे बालक नास्तिक भौतिकतावादी परिवारों में जन्मे थे किन्तु सौभाग्यवश उन्हें प्रह्लाद की संगति प्राप्त थी जो अपने जन्म से ही भगवान् के महान् भक्त थे। जब भी उन्हें अवसर मिलता, और जब अध्यापक कक्षा के बाहर होता तो वे कहा करते, "मित्रों! आओ, हम हरे कृष्ण कीर्तन करें। यह कृष्णभावनामृत शुरू करने का समय है।"

किन्तु जैसा कि हमने अभी अभी कहा, किसी बालक ने कहा होगा, "किन्तु हम अभी बच्चे हैं। हमें खेलने दीजिये। हम तुरन्त मरने वाले नहीं, हमें कुछ आनन्द लेने दीजिए। अतः बाद में कृष्णभावनामृत शुरू करेंगे।" लोग यह नहीं जानते कि कृष्णभावनामृत सर्वोच्च आनन्द है। वे सोचते हैं कि जो बालक तथा बालिकाएँ इस कृष्णभावनामृत में सम्मिलित हुए हैं, वे मूर्ख हैं। "वे प्रभुपाद के प्रभाव से इसमें सम्मिलित हुए हैं और उन्होंने भोगने योग्य अपनी सारी वस्तुएँ छोड़ दी हैं।" किन्तु

वास्तव में ऐसा नहीं है। वे सभी बुद्धिमान्, शिक्षित बालक-बालिकाएँ हैं और अत्यन्त सम्मानित परिवारों से आए हैं। वे मूर्ख नहीं हैं। वे हमारे संघ में सचमुच ही जीवन का आनन्द ले रहे हैं अन्यथा इस आन्दोलन के लिए वे अपना मूल्यवान् समय अर्पित न करते।

वस्तुतः कृष्णभावनामृत में आनन्दमय जीवन है लेकिन लोगों को इसका पता नहीं है। वे कहते हैं, "इस कृष्ण-भावनामृत से क्या लाभ है?" जब मनुष्य इन्द्रियतृप्ति में फँसकर बड़ा होता है तो उसमें से निकल पाना बहुत कठिन होता है। इसलिए वैदिक नियमों के अनुसार पाँच वर्ष की अवस्था से ही विद्यार्थी जीवन में बालकों को आध्यात्मिक जीवन के विषय में शिक्षा दी जाती हैं। इसे *ब्रह्मचर्य* कहते हैं। एक ब्रह्मचारी परम चेतना अर्थात् कृष्णभावनामृत या ब्रह्म-चेतना प्राप्त करने में अपना सारा जीवन अर्पित कर देता है।

ब्रह्मचर्य के अनेक विधि-विधान हैं। उदाहरणार्थ, किसी का पिता कितना ही धनी क्यों न हो, एक ब्रह्मचारी अपने गुरु के निर्देशन में प्रशिक्षित होने के लिए उसकी शरण में एक दास की तरह आता है और एक तुच्छ दास की भांति कार्य करता है। यह कैसे सम्भव है? हमें इसका वास्तविक अनुभव हो रहा

है कि अत्यन्त सम्मानित परिवारों के बहुत ही अच्छे बालक यहाँ पर किसी भी तरह का कार्य करने में संकोच नहीं करते। वे थालियाँ धोते हैं, फर्श साफ करते हैं, वे हर प्रकार का कार्य करते हैं। एक शिष्य की माता को अपने बेटे पर आश्चर्य हुआ, जब वह अपने घर गया। इसके पूर्व वह दुकान तक भी नहीं जाता था किन्तु अब वह चौबीसों घंटे काम में लगा रहता है। जब तक आनन्द की अनुभूति न हो, भला कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत जैसी विधि में क्यों संलग्न होने लगा? यह केवल हरे कृष्ण कीर्तन करने से ही है। यही हरे कृष्ण मन्त्र हमारी एकमात्र निधि है। मनुष्य एकमात्र कृष्णभावनामृत से प्रसन्न रह सकता है। वस्तुतः यह आनन्दपूर्ण जीवन है। किन्तु बिना प्रशिक्षित हुए ऐसा जीवन बिताया नहीं जा सकता।

प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि हर व्यक्ति पारिवारिक स्नेह से बँधा है। जो व्यक्ति पारिवारिक मामलों में अनुरक्त रहता है वह अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता। स्वभावतः हर व्यक्ति किसी न किसी से प्रेम करना चाहता है। उसे समाज, मैत्री तथा प्रेम की आवश्यकता होती है। ये आत्मा की माँगे हैं किन्तु वे विकृत रूप में प्रतिबिम्बित हो रही हैं। मैंने देखा है कि आपके देश के अनेक पुरुषों तथा स्त्रियों का कोई

पारिवारिक जीवन नहीं है, बल्कि उन्होंने अपना प्रेम कुत्तों-बिल्लियों में स्थापित कर रखा है क्योंकि वे किसी न किसी से प्रेम करना चाहते हैं। किन्तु किसी को भी उपयुक्त न पाकर अपना बहुमूल्य प्रेम कुत्ते-बिल्लियों को देते हैं। हमारा कार्य है इस प्रेम को, जिसे कहीं न कहीं स्थापित करना ही है, कृष्ण पर स्थानान्तरित करना। यही कृष्णभावनामृत है। यदि आप अपने प्रेम को कृष्ण पर स्थानान्तरित करते हैं तो यह सिद्धि है। किन्तु आजकल लोगों को हताश किया तथा ठगा जा रहा है अतएव उन्हें इसका ज्ञान नहीं रहता कि वे अपना प्रेम कहाँ स्थापित करें। अतः अन्त में वे कुत्ते-बिल्लियों पर अपना प्रेम स्थापित कर देते हैं।

हर व्यक्ति भौतिक प्रेम से बद्ध है। भौतिक प्रेम में उन्नत व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक जीवन विकसित कर पाना बहुत कठिन है क्योंकि प्रेम का यह बन्धन अत्यन्त बलशाली होता है। इसलिए प्रह्लाद महाराज प्रस्ताव रखते हैं कि मनुष्य को बाल्य-काल से ही कृष्णभावनामृत सीखना चाहिए। जब बालक पाँच-छह वर्ष का हो जाता है—जैसे ही उसकी चेतना विकसित हो जाती है—उसे प्रशिक्षण पाने के लिए पाठशाला भेज दिया जाना चाहिए। प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि उसकी शिक्षा

प्रारम्भ से ही कृष्णभावनाभावित होनी चाहिए। पाँच से लेकर पन्द्रह वर्ष तक की अवधि अत्यन्त मूल्यवान होती है। आप किसी भी बालक को कृष्णभावनामृत का प्रशिक्षण दे सकते हैं और वह इसमें सिद्ध हो जायेगा।

बालक यदि कृष्णभावनामृत में प्रशिक्षित नहीं रहता और उल्टे वह भौतिकतावाद में प्रगति कर लेता है, तो उसके लिए आध्यात्मिक जीवन विकसित कर पाना कठिन है। यह भौतिकतावाद क्या है? भौतिकतावाद का अर्थ यह है कि इस जगत् में हम सभी आत्माएँ होते हुए भी इस जगत् का किसी न किसी प्रकार भोग करना चाहते हैं। आनन्द आध्यात्मिक जगत् में कृष्ण से संबंधित अपने शुद्ध रूप में विद्यमान रहता है। किन्तु हम यहाँ कलुषित सुख का भोग कर रहे हैं। जिस तरह *बॉवरी* (न्यूयार्क की एक बस्ती) का हर व्यक्ति सोचता है कि वह कुछ शराब पीकर भोग कर सकता है। भौतिक भोग का मूल सिद्धान्त मैथुन है। इसलिए मैथुन न केवल मानव समाज में मिलेगा अपितु बिल्ली-समाज, कुत्ता-समाज, पक्षी समाज सभी में भी मिलेगा। दिन में कबूतर कम से कम बीस बार संभोग करता है। यही उसका आनन्द है।

श्रीमद्भागवतम् द्वारा यह पुष्टि होती है कि भौतिक भोग

नर तथा नारी के यौन-मिलाप से अधिक किसी अन्य पर आधारित नहीं है। प्रारम्भ में कोई लड़का सोचता है, "वाह! वह लड़की कितनी सुन्दर है" और लड़की कहती है कि वह लड़का उत्तम है। जब वे मिलते हैं तो भौतिक कल्मष अधिक प्रगाढ़ हो जाता है। और जब वे संभोग करते हैं, तो वे और अधिक लिप्त हो जाते हैं। कैसे? जैसे ही लड़का तथा लड़की विवाहित हो जाते हैं, वे एक घर चाहते हैं। फिर उनके बच्चे उत्पन्न होते हैं। जब बच्चे जन्म ले लेते हैं तो वे सामाजिक मान्यता—समाज, मैत्री तथा प्रेम चाहते हैं। इस तरह भौतिक आसक्ति बढ़ती जाती है। इन सभी में धन की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति अतीव भौतिकतावादी होता है वह किसी को भी ठग सकता है, किसी का भी वध कर सकता है, धन की माँग कर सकता है, उधार ले सकता है या चोरी कर सकता है, कोई भी कार्य जिससे धन प्राप्त हो सके, कर सकता है। वह जानता है कि उसका घर, उसका परिवार, उसकी पत्नी और बच्चे सर्वदा विद्यमान नहीं रहेंगे। वे समुद्र के बुलबुले के समान हैं। जो उत्पन्न होते हैं थोड़ी देर में चले जाते हैं। किन्तु वह अत्यधिक आसक्त रहता है। उनके परिपालन के लिए आवश्यक धन प्राप्त करने के लिए वह अपने आध्यात्मिक

विकास की बलि दे देता है। "मैं यह शरीर हूँ। मैं इस भौतिक जगत का हूँ। मैं इस देश का हूँ, मैं इस जाति का हूँ, मैं इस धर्म का हूँ और मैं इस परिवार से सम्बन्धित हूँ।" यह विकृत चेतना बढ़ती ही जाती है। उसका कृष्णभावनामृत कहाँ है? वह इतनी गहराई तक फँस जाता है कि उसके लिए धन अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान बन जाता है। दूसरे शब्दों में वह धन के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल सकता है। चाहे कोई गृहस्थ हो या श्रमिक, व्यापारी हो या चोर-डकैत, या धूर्त–हर व्यक्ति धन के पीछे लगा हुआ है। यही मोह है। इस बन्धन में वह अपने को विनष्ट कर देता है।

प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि इस अवस्था में, जब आप भौतिकतावाद में अत्यधिक लीन हों, तो आप कृष्णभावनामृत का अनुशीलन नहीं कर सकते। इसलिए मनुष्य को बालपन से ही कृष्णभावनामृत का अभ्यास करना चाहिए। निस्सन्देह चैतन्य महाप्रभु इतने दयालु हैं कि वे कहते हैं, "कभी न करने की अपेक्षा विलम्ब से करना श्रेष्ठ है" यद्यपि तुम अपने बालपन से ही कृष्णभावनामृत को प्रारम्भ करने का अवसर गँवा दिया हो, किन्तु तुम जैसी भी स्थिति में हो वहीं से आरम्भ करो। यही चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है। उन्होंने यह कभी नहीं

कहा कि चूँकि तुमने अपने बचपन से कृष्णभावनामृत नहीं शुरू किया इसलिए तुम उन्नति नहीं कर सकते। वे अत्यन्त कृपालु हैं। उन्होंने हमें यह उत्तम हरे कृष्ण कीर्तन की विधि प्रदान की है–*हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।* आप चाहे जवान हों या बूढ़े, चाहे आप जो भी हों, बस इसे शुरू कर दें। आप यह नहीं ज़ानते कि आपका जीवन कब समाप्त हो जायेगा। यदि आप निष्ठापूर्वक क्षणभर के लिए भी क ीर्तन करते हैं, तो इसका बहुत प्रभाव पड़ेगा। यह आपको महान् से महान् संकट से, अगले जीवन में पशु बनने से बचा लेगा।

यद्यपि प्रह्लाद महाराज पाँच वर्ष के हैं किन्तु एक अत्यन्त अनुभवी तथा शिक्षित व्यक्ति की तरह बोलते हैं क्योंकि उन्हें अपने गुरु नारद मुनि से ज्ञान प्राप्त किया था। इसका उद्घाटन *श्रीमद्भागवतम्* के अगले अध्याय (७.७) में किया गया है। ज्ञान आयु पर निर्भर नहीं करता अपितु प्राप्ति के श्रेष्ठ स्रोत पर निर्भर करता है। केवल आयु में वृद्धि से ही कोई चतुर नहीं बन जाता। ऐसा सम्भव नहीं है। ज्ञान एक श्रेष्ठ स्रोत से ग्रहण करना होता है, तभी मनुष्य बुद्धिमान हो सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कोई पाँच वर्ष का बालक है या

पचास वर्ष का बूढ़ा। जैसा कि कहा जाता है, "ज्ञान से मनुष्य कम आयु का होने पर भी वृद्ध माना जाता है।"

यद्यपि प्रह्लाद केवल पाँच वर्ष के थे किन्तु ज्ञान में उन्नत होने के कारण वे अपने सहपाठियों को सम्यक् उपदेश दे रहे थे। कुछ लोगों को ये उपदेश अरुचिकर लग सकते हैं। मान लीजिए कोई व्यक्ति विवाहित है और प्रह्लाद का उपदेश है कि, "कृष्णभावनामृत ग्रहण कीजिये।" वह सोचेगा "मैं अपनी पत्नी को कैसे छोड़ सकता हूँ?" हम तो साथ साथ उठते, बैठते, बातें करते और आनन्द मनाते हैं। भला कैसे छोड़ सकता हूँ? पारिवारिक आकर्षण अत्यन्त प्रबल होता है।

मैं वृद्ध हूँ, मेरी आयु ७२ वर्ष की है। मैं विगत १४ वर्षों से अपने परिवार से विलग हूँ, तथापि कभी कभी मैं भी अपनी पत्नी और बच्चों के विषय में सोचता हूँ। यह स्वाभाविक है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मुझे वापस जाना होगा। यह ज्ञान है। जब मन इन्द्रियतृप्ति के विचारों में मग्न होता है, तो यह समझना चाहिए कि "यह मोह है।"

वैदिक प्रणाली के अनुसार मनुष्य को पचास वर्ष की आयु में अपना परिवार छोड़ना ही पड़ता है। उसे जाना ही पड़ेगा। इसका कोई दूसरा विकल्प नहीं है। प्रथम पच्चीस वर्ष विद्यार्थी

जीवन के लिए हैं। पाँच वर्ष से पच्चीस वर्ष की आयु तक उसे कृष्णभावनामृत की सुचारु रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए। मनुष्य की शिक्षा का मूल सिद्धान्त कृष्णभावनामृत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होना चाहिए। तभी इस लोक में तथा अगले लोक में यह जीवन सुखमय तथा सफल होगा। कृष्ण-भावनाभावित शिक्षा का अर्थ है कि मनुष्य को पूरी तरह भौतिक चेतना छोड़ने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। यही सम्यक् कृष्णभावनामृत है।

किन्तु यदि कोई विद्यार्थी कृष्णभावनामृत के सार को ग्रहण नहीं कर पाता तो उसे सुयोग्य पत्नी से विवाह करने और शान्तिपूर्ण गृहस्थ जीवन बिताने की अनुमति दी जाती है। चूँकि उसे कृष्णभावनामृत के मूल सिद्धान्तों का प्रशिक्षण दिया जा चुका होता है इसलिए वह इस भौतिक जगत् में नहीं फँसेगा। जो व्यक्ति सादा जीवन बिताता है—सादा जीवन और उच्च विचार—वह पारिवारिक जीवन में भी कृष्णभावनामृत में प्रगति कर सकता है।

अतएव पारिवारिक जीवन की निन्दा नहीं की जाती। किन्तु यदि मनुष्य अपनी आध्यात्मिक पहचान भूल कर सांसारिक व्यापारों में फँस जाता है, तो वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

उसके जीवन का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। यदि कोई यह सोचता है कि मैं कामवासना से अपने को नहीं बचा सकता तो उसे चाहिए कि वह विवाह कर ले। इसकी संस्तुति है। लेकिन अवैध मैथुन न किया जाये। यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री को चाहता है या कोई स्त्री किसी पुरूष को चाहती है, तो उन्हें चाहिए कि विवाह करके कृष्णभावनामृत में जीवन बितायें।

जो व्यक्ति बचपन से ही कृष्णभावनामृत में प्रशिक्षित किया जाता है, भौतिक जीवन शैली के प्रति स्वभावतः उसकी रुचि कम हो जाती है और पचास वर्ष की आयु में वह ऐसे जीवन का परित्याग कर देता है। वह किस तरह परित्याग करना शुरू करता है? पति तथा पत्नी घर छोड़ कर एक साथ तीर्थयात्रा पर चले जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति पच्चीस वर्ष से लेकर पचास वर्ष की आयु तक पारिवारिक जीवन में् रहा है, तो तब तक उसकी कुछ सन्तानें अवश्य ही बड़ी हो जाती हैं। इस तरह पचास वर्ष की आयु में पति अपने पारिवारिक मामले अपने गृहस्थ जीवन बिताने वाले पुत्रों में से किसी को सौंप कर अपनी पत्नी के साथ पारिवारिक बन्धनों को भुलाने के लिए किसी तीर्थस्थान की यात्रा पर जा सकता है। जब वह पुरुष पूरी तरह विरक्त हो जाता है, तो वह अपनी पत्नी से अपने पुत्रों के पास

वापस चले जाने के लिए कहता है और स्वंय अकेला रह जाता है। यही वैदिक प्रणाली है। हमें क्रमशः आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करने के लिए अपने आप को अवसर देना चाहिए। अन्यथा यदि हम सारे जीवन भौतिक चेतना में ही बँधे रहे तो हम अपनी कृष्णचेतना में पूर्ण नहीं बन सकेंगे और इस मानव जीवन के सुअवसर को खो देंगे।

तथाकथित सुखी पारिवारिक जीवन का अर्थ है कि हमारी पत्नी तथा हमारी सन्तानें हमें अत्यधिक प्रेम करती हैं। इस तरह हम जीवन का आनन्द उठाते हैं। किन्तु हम यह नहीं जानते कि यह आनन्द या भोग मिथ्या है और मिथ्या आधार पर टिका है। हमें पलक झपकते ही इस भोग को त्यागना पड़ सकता है। मृत्यु हमारे वश में नहीं है। *भगवद्गीता* से हम यह सीखते हैं कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी पर अधिक आसक्त रहता है तो मरने पर अगले जन्म में उसे स्त्री का शरीर प्राप्त होगा। यदि पत्नी अपने पति पर अत्यधिक अनुरक्त रहती है, तो अगले जन्म में उसे पुरुष का शरीर प्राप्त होगा। इसी प्रकार, यदि आप पारिवारिक व्यक्ति नहीं हैं बल्कि कुत्तों-बिल्लियों से अधिक लगाव रखते हैं तो अगले जीवन में आप कुत्ता या बिल्ली होंगे। ये *कर्म* अर्थात् भौतिक प्रकृति के नियम हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को तुरन्त ही कृष्णभावनामृत प्रारम्भ कर देना चाहिए। मान लीजिये कि कोई यह सोचता है, "मैं अपना यह खेलकूद का जीवन बिताने के बाद जब बूढ़ा हो जाऊँगा और मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं होगा तो मैं कृष्णभावनामृत संघ में जाकर कुछ सुनूँगा।" निश्चय ही उस समय आध्यात्मिक जीवन बिताया जा सकता है किन्तु इसकी प्रतिभूति कहाँ है कि कोई व्यक्ति वृद्धावस्था तक जीवित रहेगा? मृत्यु किसी भी समय आ सकती है इसलिए आध्यात्मिक जीवन को टालना अत्यन्त खतरनाक है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि तत्क्षण कृष्णभावनामृत के सुअवसर का लाभ उठाए। यही इस संघ का प्रयोजन है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की किसी भी अवस्था में कृष्णभावनामृत प्रारम्भ करने का अवसर प्रदान किया जाये। **हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे** के कीर्तन की विधि से प्रगति द्रुतगति से होती है तथा फल की प्राप्ति तत्काल होती है।

हम उन समस्त देवियों एवं सज्जनों से, जो कि हमारा व्याख्यान सुनते हैं या हमारा साहित्य पढ़ते हैं, अनुरोध करेंगे कि घर पर खाली समय में हरे कृष्ण कीर्तन करें और हमारी

पुस्तकें पढ़ें। यही हमारा अनुरोध है। हमें विश्वास है कि आपको यह विधि अत्यन्त सुखकर तथा प्रभावशाली लगेगी।

मैं कृष्ण से सर्वाधिक प्रेम करता हूँ!

अब प्रह्लाद महाराज भौतिक जीवन की जटिलताओं के विषय में आगे कहते हैं। वे आसक्त गृहस्थ की उपमा रेशम के कीट से देते हैं। रेशम का कीट अपने ही थूक से बनाये गये रेशमकोष में अपने को तब तक लपेटता रहता है, जब तक वह इस रेशमकोष में बन्दी नहीं हो जाता। वह वहाँ से निकल नहीं सकता। इसी प्रकार भौतिकतावादी गृहस्थ का बन्धन इतना दृढ़ हो जाता है कि वह पारिवारिक आकर्षण रूपी कोष से निकल नहीं पाता। यद्यपि भौतिकतावादी गृहस्थ जीवन में अनेकानेक कष्ट हैं किन्तु वह उनसे छूट नहीं पाता। क्यों? क्योंकि वह सोचता है कि मैथुन-भोग तथा स्वादिष्ट भोजन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसीलिए अनेकानेक कष्टों के होने पर भी वह उनका परित्याग नहीं कर पाता।

इस तरह जब कोई व्यक्ति पारिवारिक जीवन में अत्यधिक फँसा रहता है तो वह अपने वास्तविक लाभ के विषय में, भौतिक जीवन से मुक्ति पाने के विषय में, सोच नहीं पाता। यद्यपि वह भौतिकतावादी जीवन के तीन तापों से सदैव विचलित रहता है तथापि प्रबल पारिवारिक स्नेह के कारण वह बाहर नहीं आ पाता। वह यह नहीं जानता कि मात्र पारिवारिक स्नेहवश वह अपनी सीमित आयु को नष्ट कर रहा है। वह उस जीवन को नष्ट कर रहा है जो आत्म-साक्षात्कार के लिए, अपने वास्तविक आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति करने के लिए मिला था।

प्रह्लाद महाराज अपने आसुरी मित्रों से कहते हैं, "इसलिए तुम लोग उनकी संगति छोड़ दो जो भौतिक भोगों में आसक्त हैं। तुम लोग उन व्यक्तियों की संगति क्यों नहीं करते जो कृष्ण-भावनामृत का अनुशीलन कर रहे हैं।" यही उनका उपदेश है। वे अपने मित्रों से कहते हैं कि इस कृष्णभावनामृत को प्राप्त करना सरल है। क्यों? वस्तुतः कृष्णभावनामृत हमें अत्यन्त प्रिय है किन्तु हम उसे भूल चुके हैं। अतः जो व्यक्ति कृष्ण-भावनामृत को अंगीकार करता है वह इससे अधिकाधिक प्रभावित होता है और अपनी भौतिक चेतना को भूल जाता है।

यदि आप विदेश में हैं तो आप अपने घर को, अपने परिवारजनों को तथा अपने मित्रों को भूल सकते हैं जो आपको अत्यन्त प्रिय हैं। किन्तु यदि आपको अचानक उनकी स्मृति हो जाए तो आप तुरन्त अभिभूत हो उठेंगे "मैं उनसे कैसे मिल सकूँगा?" सैन-फ्रांसिस्को में हमारे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वह बहुत पहले अपने बच्चों को छोड़कर किसी दूसरे देश में चला गया था। हाल ही में उसके जवान पुत्र का पत्र आया है। इससे तुरन्त ही पिता को उसके प्रति अपने स्नेह का स्मरण हो आया और उसने कुछ धन उसके पास भेज दिया। यह स्नेह स्वतः उत्पन्न हुआ यद्यपि वह अपने पुत्र को इतने वर्षों से भूला हुआ था। इसी प्रकार कृष्ण के प्रति हमारा स्नेह इतना प्रगाढ़ है कि जैसे ही कृष्णभावनामृत का तनिक भी स्पर्श होता है कि हमें तुरन्त ही कृष्ण से अपने सम्बन्ध का स्मरण हो जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति का भगवान् कृष्ण से कुछ न कुछ विशेष सम्बन्ध होता है जिसे वह भूल चुका है। किन्तु जैसे जैसे हम कृष्ण-भावनाभावित होते जाते हैं, वैसे वैसे कृष्ण के साथ हमारे सम्बन्ध की पुरानी चेतना क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। और जब हमारी चेतना वास्तव में सुस्पष्ट हो जाती है तो हम कृष्ण के साथ अपने विशेष सम्बन्ध को समझ सकते हैं। कृष्ण के

साथ हमारा सम्बन्ध पुत्र या दास के रूप में, मित्र के रूप में, माता-पिता के रूप में अथवा प्रेमिका या प्रिय पत्नी के रूप में हो सकता है। ये सारे सम्बन्ध इस भौतिक जगत् में विकृत रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं। किन्तु कृष्णभावनामृत के पद को प्राप्त करते ही कृष्ण से हमारा पुराना सम्बन्ध फिर से जागृत हो उठता है।

हममें से हर व्यक्ति प्रेम करता है। सर्वप्रथम मैं अपने शरीर से प्रेम करता हूँ क्योंकि मेरी आत्मा इस शरीर के भीतर है। अतएव मैं अपनी आत्मा को अपने शरीर से बढ़कर प्रेम करता हूँ। किन्तु उस आत्मा का कृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि आत्मा कृष्ण का भिन्नांश है। इसलिए मैं कृष्ण से सर्वाधिक प्रेम करता हूँ और चूँकि कृष्ण सर्वव्यापक हैं अतएव मैं हर वस्तु से प्रेम करता हूँ।

दुर्भाग्यवश हम भूल चुके हैं कि कृष्ण या ईश्वर सर्वव्यापक हैं। इस स्मृति को पुनरुज्जीवित करना है। अपने कृष्ण-भावनामृत को पुनरुज्जीवित करते ही हम हर वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित देख सकेंगे और तब प्रत्येक वस्तु प्रेम करने योग्य हो जायेगी। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ या तुम मुझे प्रेम करते हो किन्तु यह प्रेम इस क्षणभंगुर शरीर के स्तर पर है। किन्तु जब

कृष्ण-प्रेम विकसित हो जाता है तो मैं न केवल तुमसे प्रेम करूँगा अपितु मैं हर जीव से प्रेम करूँगा क्योंकि तब बाह्य उपाधि अर्थात् शरीर विस्मृत हो जायेगा। जब कोई व्यक्ति पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हो जाता है तो वह यह नहीं सोचता कि यह मनुष्य है, यह पशु है, यह कुत्ता है, यह बिल्ली है, यह कीड़ा है। वह प्रत्येक को कृष्ण के भिन्नांश रूप में देखता है। इसकी सुन्दर व्याख्या *भगवद्गीता* में हुई है, "जो वास्तविक कृष्णभावनामृत का ज्ञाता है, वह इस ब्रह्माण्ड में प्रत्येक जीव को प्रेम करता है।" जब तक कोई व्यक्ति कृष्णभावनाभावित पद पर स्थित नहीं हो जाता, तब तक विश्वबन्धुत्व का प्रश्न ही नहीं उठता।

यदि हम वास्तव में विश्वबन्धुत्व के विचार को कार्यान्वित करना चाहते हैं, तो हमें भौतिक चेतना की अपेक्षा कृष्ण-भावनामृत के पद पर पहुँचना होगा। जब तक हम भौतिक चेतना में रहेंगे हमारी प्रेय वस्तुओं की संख्या सीमित होगी किन्तु जब हम वास्तव में कृष्णभावनामृत में होंगे तो हमारे प्रेय सार्वभौम होंगे। प्रह्लाद महाराज यही कहते हैं, "जड़ वृक्षों से लेकर सर्वोच्च सजीव प्राणी ब्रह्मा तक में भगवान् अपने परमात्मा रूप के विस्तार में सर्वत्र उपस्थित हैं। जैसे ही हम

कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वह विस्तार परमात्मा हमें प्रेरित करते हैं कि हम हर वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित जानकर प्रेम करें।"

भगवान् की सर्वव्यापकता की अनुभूति

प्रह्लाद महाराज ने अपने सहपाठियों को भगवान् की सर्वव्यापकता के विषय में सूचना दी। यद्यपि भगवान् अपने विस्तारों तथा अपनी शक्तियों के द्वारा सर्वव्यापी हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अपना व्यक्तित्व खो चुके हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है। यद्यपि वे सर्वव्यापी हैं तथापि वे पुरुष हैं। हमारी भौतिक विचारधारा के अनुसार यदि कोई वस्तु सर्वव्यापक होती है तो उसका व्यक्तित्व नहीं होता है, उसका कोई स्थानीकृत पक्ष नहीं रहता। लेकिन ईश्वर ऐसे नहीं है। उदाहरणार्थ, धूप सर्वव्यापी है किन्तु सूर्य का स्थानीय पक्ष—सूर्यलोक—भी है जिसे आप देख सकते हैं। इस तरह न केवल सूर्यलोक है अपितु

सूर्यलोक के भीतर सूर्यदेव हैं जिनका नाम विवस्वान है। यह ज्ञान हमें वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है। अन्य लोकों में क्या हो रहा है इसको जानने के लिए हमारे पास प्रामाणिक स्रोतों से सुनने के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है। आधुनिक सभ्यता में हम ऐसे विषयों पर वैज्ञानिकों को प्रमाण मानते हैं। हम वैज्ञानिक को यह कहते सुनते हैं, "हम चन्द्रमा देख चुके हैं और यह ऐसा है, वैसा है।" और हम इस पर विश्वास कर लेते हैं। हम किसी वैज्ञानिक के साथ चन्द्रमा देखने नहीं गये किन्तु हम उस पर विश्वास कर लेते हैं।

ज्ञान का मूलाधार विश्वास है। आप चाहे वैज्ञानिकों पर विश्वास करें चाहे वेदों पर। यह आप पर निर्भर करता है कि किस स्रोत पर आपका विश्वास है। अन्तर इतना ही है कि वेदों से प्राप्त सूचना निर्दोष है जबकि वैज्ञानिकों से प्राप्त सूचना सदोष है। वैज्ञानिकों की सूचना सदोष क्यों है? क्योंकि प्रकृति द्वारा बद्ध सामान्य व्यक्ति में चार दोष पाये जाते हैं। वे कौन-कौन से हैं? पहला दोष यह है कि बद्ध मानव की इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं। हम सूर्य को एक छोटे गोले के रूप में देखते हैं? क्यों? क्योंकि वह पृथ्वी से बहुत दूर है किन्तु हम उसे एक छोटे गोले के रूप में देखते हैं। हर व्यक्ति जानता है कि हमारी

देखने तथा सुनने आदि की शक्तियाँ सीमित हैं। चूँकि इन्द्रियाँ सीमित हैं इसलिए बद्ध जीव निश्चित रूप से भूलें कर सकता है चाहे वह कितना ही बड़ा वैज्ञानिक क्यों न हो। अभी बहुत समय नहीं बीता जब इस देश के वैज्ञानिक प्रक्षेपास्त्र छोड़ रहे थे तो एक दुर्घटना हो गई और वह प्रक्षेपास्त्र तुरन्त जलकर राख हो गया। इस तरह एक भूल हो गई। बद्ध जीव भूलें करता ही रहेगा क्योंकि यह बद्ध जीव का यह स्वभाव है। भूल चाहे बहुत छोटी हो या बहुत बड़ी किन्तु भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध मनुष्य निश्चित रूप से भूलें करेगा।

यही नहीं, बद्ध जीव मोहग्रस्त होता रहता है। यह तब होता है, जब वह किसीं वस्तु को निरन्तर दूसरी वस्तु समझता रहता है। उदाहरणार्थ, हम शरीर को स्वयं मान बैठते हैं। चूँकि मैं यह शरीर नहीं हूँ अतः मेरे द्वारा इस शरीर को स्वयं समझना मोह है। सारा संसार इसी मोह में है कि "मैं यह शरीर हूँ", इसीलिए शान्ति नहीं है। मैं अपने को भारतीय सोचता हूँ, आप अपने को अमरीकी मानते हैं और एक चीनी अपने को चीन का वासी सोचता है। आखिर "भारतीय," "अमरीकी," "चीनी" क्या है? यह शरीर पर आधारित मोह ही तो है। यही इसका सार है।

बद्ध जीव का चौथा दोष है, धोखा देने की प्रवृत्ति। भले ही कोई व्यक्ति मूर्ख हो, किन्तु मैं शेखी बघारूँगा कि मैं अत्यन्त विद्वान् हूँ। मोहग्रस्त तथा भूल करने वाला हर व्यक्ति मूर्ख है तथापि वह अपने को अच्युत प्रकाण्ड विद्वान् मानता है। इस तरह सारे बद्ध जीवों की इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं, सारे बद्ध जीव भूल करते हैं और मोहग्रस्त होते हैं तथा उनमें धोखा देने की प्रवृत्ति होती है।

भला ऐसे बद्ध जीवों से वास्तविक ज्ञान की आशा किस तरह की जा सकती है? उनसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं है। कोई व्यक्ति चाहे वह वैज्ञानिक हो, दार्शनिक हो या अन्य कुछ, बद्ध होने के कारण वह पूर्ण सूचना नहीं दे पाता चाहे वह कितना ही शिक्षित क्यों न हो। यह एक तथ्य है।

तब यह प्रश्न किया जा सकता है कि पूरी सूचना किस तरह से प्राप्त हो? इसकी विधि यही है कि गुरुओं तथा शिष्यों की परम्परा से, जो कृष्ण से प्रारम्भ होती है, ज्ञान प्राप्त किया जाये। *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "मैंने भगवद्गीता का यह ज्ञान सर्वप्रथम सूर्यदेव को दिया, सूर्यदेव ने इसे अपने पुत्र मनु को दिया। मनु ने उसे अपने पुत्र इक्ष्वाकु

को और इक्ष्वाकु ने उसे अपने पुत्र को दिया। इस तरह से यह ज्ञान हस्तान्तरित होता रहा। किन्तु दुर्भाग्यवश यह परम्परा अब विच्छिन्न हो गई है। इसलिए हे अर्जुन! अब वही ज्ञान मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय मित्र तथा उत्तम भक्त हो।" यही सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने की विधि है। उच्चतर स्रोतों से आने वाली दिव्य ध्वनि को ग्रहण करना चाहिए। सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान दिव्य ध्वनि है जो भगवान् को समझने में हमारा सहायक है।

अतः प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वव्यापक परमात्मा से अभिन्न हैं। यही ज्ञान *ब्रह्मसंहिता* में भी दिया गया है कि भगवान् अपने दिव्य धाम में स्थित रहकर भी सर्वव्यापक हैं। उनके सर्वत्र उपस्थित रहने पर भी हम अपनी अपूर्ण इन्द्रियों के के द्वारा उन्हें देख नहीं पाते।

तत्पश्चात् प्रह्लाद महाराज कहते हैं, "यद्यपि उन्हें देखा नहीं जा सकता तो भी उनकी अनुभूति की जा सकती है। जो बुद्धिमान् है वह भगवान् की सर्वत्र उपस्थिति की अनुभूति करता है।" यह कैसे सम्भव है? दिन के समय कमरे के भीतर रहकर भी यह जाना जा सकता है कि दिन चढ़ आया है। चूँकि कमरे में प्रकाश आ रहा है इसलिए यह समझा जा सकता है

कि आकाश में सूर्य चमक रहा है। इसी तरह जिन्होंने परम्परा से पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है वे जानते हैं कि हर वस्तु भगवान् की शक्ति का प्रसार है। इसलिए वे भगवान् का सर्वत्र दर्शन करते हैं।

हम अपनी भौतिक इन्द्रियों से क्या अनुभव करते हैं? जो हमारी भौतिक आँख से दृष्टिगोचर होता है उसे हम देख सकते हैं—जैसे कि पृथ्वी, जल तथा अग्नि। किन्तु हम वायु को नहीं देख सकते, यद्यपि हम स्पर्श द्वारा उसका अनुभव कर सकते हैं। ध्वनि के द्वारा हम समझ सकते हैं कि आकाश है और सोचने, अनुभव करने, इच्छा करने आदि के कारण हम समझ सकते हैं कि मन है। इसी तरह हम समझ सकते हैं कि बुद्धि है जो मन का मार्गदर्शन करती है। यदि हम और आगे चलें तो हम समझ सकते हैं कि "मैं चेतना हूँ।" जो व्यक्ति और भी उन्नत है वह समझ सकता है कि चेतना का स्रोत आत्मा है और सबके ऊपर परमात्मा है।

हमारे चारों ओर जो वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वे भगवान् की अपरा शक्ति का विस्तार हैं किन्तु भगवान् की एक परा या श्रेष्ठ शक्ति भी है जिसे चेतना कहते हैं। इस चेतना को हमें उच्चतर अधिकारियों से समझना होता है किन्तु हम इसका

अनुभव प्रत्यक्ष रूप से भी कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, हम इसका अनुभव कर सकते हैं कि हमारे पूरे शरीर में चेतना प्रसारित है। यदि मैं अपने शरीर के किसी भी भाग में चुटकी काटूँ तो मुझे पीड़ा होगी—इसका अर्थ हुआ कि मेरे पूरे शरीर में चेतना है। *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं कि हमें यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि चेतना सारे शरीर में फैली हुई है और वह शाश्वत है। इसी तरह इस समूचे ब्रह्माण्ड में चेतना फैली हुई है। लेकिन वह हमारी चेतना नहीं है। वह ईश्वर की चेतना है। इस तरह परमात्मा अपनी चेतना के द्वारा सर्वव्यापक हैं। जिसने यह समझ लिया है, समझ लो कि उसने कृष्ण-भावनामृत का शुभारम्भ कर लिया है।

अपनी चेतना को कृष्णभावनामृत से युक्त करना हमारी विधि है और यह हमें पूर्णता प्रदान करेगी। ऐसा नहीं है कि उस चेतना में हमारा विलय हो जायेगा। एक तरह से हम लीन हो जाते हैं तथापि हम अपना व्यष्टित्व बनाये रखते हैं। निर्विशेषवादी दर्शन तथा कृष्णभावनाभावित दर्शन में यही अन्तर है। निर्विशेषवादी दार्शनिक कहते हैं कि सिद्धि (पूर्णता) का अर्थ है ब्रह्म में लीन होना और अपने व्यष्टित्व को खो देना। हम कहते हैं कि सिद्धि अवस्था में हम ब्रह्म में लीन हो

जाते हैं लेकिन अपने व्यष्टित्व को बनाये रखते हैं। ऐसा किस तरह हो सकता है? एक हवाई जहाज हवाई अड्डे से उड़ान भरने के बाद ऊपर उठता जाता है और जब वह बहुत ऊपर चला जाता है तो हम उसे नहीं देख पाते, तब हमें केवल आकाश दिखता है। किन्तु यह जहाज खोता नहीं, तब भी रहता है। इसी तरह से एक विशाल हरे वृक्ष पर बैठता हुआ हरा पक्षी। हम पक्षी तथा वृक्ष में अन्तर नहीं कर पाते किन्तु दोनों का अस्तित्व बना रहता है। इसी तरह परम चेतना कृष्ण है और जब हम अपनी चेतना को ब्रह्म से जोड़ते हैं तो हम पूर्ण बनते हैं किन्तु हमारा व्यष्टित्व बना रहता है। एक बाह्य व्यक्ति यह सोच सकता है कि ईश्वर तथा उनके शुद्ध भक्त में कोई अन्तर नहीं है किन्तु यह अल्प ज्ञान के कारण होता है। हर व्यक्ति, हर प्राणी अपने व्यष्टित्व को शाश्वत रूप से बनाये रखता है भले ही वह ब्रह्म से युक्त क्यों न हो गया हो।

प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि हम चेतना को—चाहे वह परम चेतना हो या व्यष्टि चेतना—देख नहीं सकते किन्तु वह विद्यमान रहती है। तो हम कैसे समझें कि चेतना विद्यमान है? हम परम चेतना तथा अपनी निजी चेतना को आनन्दमयता की अनुभूति द्वारा सरलता से समझ सकते हैं। चूँकि हममें चेतना

हैं इसलिए हम *आनन्द* का अनुभव कर सकते हैं। चेतना के बिना आनन्द की अनुभूति नहीं होती। चेतना के ही कारण हम अपनी इन्द्रियों का इच्छानुसार प्रयोग करके जीवन का आनन्द उठा सकते हैं। किन्तु जैसे ही शरीर से चेतना चली जाती है, हम इन्द्रियों का भोग नहीं कर सकते।

हमारी चेतना का अस्तित्व इसीलिए है क्योंकि हम परम चेतना के भिन्नांश हैं। उदाहरणार्थ, एक चिनगारी, अग्नि का एक लघु कण मात्र होती है तथापि वह अग्नि है। अटलांटिक सागर की एक बूँद में जल का वही गुण रहता है जो समस्त सागरों के जल में है अर्थात् वह भी खारी है। इसी तरह से, भगवान् में ह्लादिनी शक्ति होने के कारण हम भी आनन्द का भोग कर सकते हैं। चूँकि भगवान् *परमेश्वर* या परम नियामक हैं अतः हम भी *ईश्वर* या नियामक हैं। उदाहरणार्थ, जब मुझे खाँसी आती है तो मैं पानी पी सकता हूँ। यह मेरी नियामक शक्ति है। हममें से प्रत्येक में यह नियामक शक्ति अपनी अपनी क्षमता के अनुसार पाई जाती है। लेकिन हम परम नियामक नहीं हैं। परम नियामक तो कृष्ण हैं।

चूँकि कृष्ण परम नियामक हैं अतएव वे अपनी विभिन्न शक्तियों द्वारा विश्व के सभी कार्यों का नियमन कर सकते हैं।

मैं भी अनुभव करता हूँ कि कुछ हद तक मैं अपने शरीर के कार्यों का नियमन कर रहा हूँ किन्तु परम नियामक न होने से यदि इस शरीर में कोई दोष आ जाता है तो मुझे वैद्य के पास जाना पड़ता है। इसी तरह से अन्य शरीरों के ऊपर भी मेरा कोई नियन्त्रण नहीं है। मैं इस हाथ को "अपना हाथ" कहता हूँ क्योंकि मैं इससे कार्य कर सकता हूँ और इच्छानुसार इसे हिला-डुला सकता हूँ। लेकिन मैं आपके हाथ का नियामक नहीं हूँ। यदि मैं आपके हाथ को हिलाना-डुलाना चाहूँ तो यह मेरे वश में नहीं है; यह तो आपके वश में है। आप चाहें तो अपना हाथ हिला-डुला सकते हैं। इसलिए मैं आपके शरीर का नियामक नहीं हूँ, न ही आप मेरे शरीर के नियामक हैं किन्तु परमात्मा आपके शरीर के, मेरे शरीर के तथा हरएक के शरीर के नियामक हैं।

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि तुम अर्थात् आत्मा अपने शरीर में उपस्थित हो और तुम्हारा शरीर कर्मों का क्षेत्र है। इसलिए आप जो भी कर्म करते हैं, वह आपके शरीर के क्षेत्र द्वारा परिसीमित है। एक भूभाग में बँधा पशु उस क्षेत्र में विचरण कर सकता है किन्तु वहाँ से बाहर नहीं जा सकता। इसी तरह से आपका कर्म तथा मेरा कर्म हमारे शरीरों की

सीमाओं के भीतर बँधा है। किन्तु कृष्ण कहते हैं, "मैं प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित रहता हूँ।" इस तरह परमात्मा होने के कारण कृष्ण जानते हैं कि मेरे शरीर में, आपके शरीर में तथा अन्य लाखों-करोड़ों शरीरों में क्या हो रहा है। इसीलिए वे परम नियामक हैं। हमारी शक्ति सीमित है किन्तु उनकी शक्ति असीमित है। उनकी नियामक शक्ति से, उनकी परम इच्छा से, यह भौतिक सृष्टि संचालित है। इसकी पुष्टि भी *भगवद्गीता* से होती है जहाँ कृष्ण यह कहते हैं, "सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति मेरे अधीक्षण में कार्य करती है। तुम इस जगत् में जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ देख रहे हो, वे मेरे अधीक्षण—मेरे परम नियन्त्रण—के कारण हैं।"

कृष्णभावनामृत : दया की पूर्णता

अब प्रह्लाद महाराज अपना निष्कर्ष सुनाते हैं, "हे मित्रों! चूँकि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं और चूँकि हम भगवान् के भिन्नांश हैं, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम समस्त जीवों पर दयालु हों।" जब कोई व्यक्ति निम्नतर पद पर होता है तो

उसकी सहायता करना हमारा कर्तव्य है। उदाहरणार्थ, चूँकि शिशु असहाय होता है अतएव वह अपने माता-पिता की दया पर आश्रित होता है, वह कहता है, "माँ! मुझे यह वस्तु चाहिए" और माता कहती है, "हाँ बेटे! दे रही हूँ।" हमें हर जीव पर दयालु होना चाहिए और उन पर दया दर्शानी चाहिए।

हम किस तरह सभी पर अपनी दया दिखलायें? संसार में करोड़ों दीन-दुखियारे हैं, तो हम सबों पर किस तरह दया का प्रदर्शन करें? क्या हम संसार-भर के सभी अभावग्रस्त लोगों को वस्त्र और भोजन दे सकते हैं? ऐसा सम्भव नहीं है। तो फिर हर जीव पर हम किस तरह दयालु हों? उन्हें कृष्ण-भावनामृत प्रदान करके। प्रह्लाद महाराज इसी विधि से अपने सहपाठियों पर वास्तविक दया का प्रदर्शन कर रहे हैं। वे सब के सब मूर्ख थे, कृष्णभावनामृत से विहीन। इसीलिए प्रह्लाद महाराज उन्हें कृष्णभावनाभावित होने का मार्ग दिखला रहे थे। यही सर्वोच्च दया है। यदि आप समस्त जीवों पर तनिक भी दया करना चाहते हैं, तो उन्हें कृष्णभावनामृत का प्रकाश दीजिये जैसा कि प्रह्लाद महाराज ने किया। अन्यथा भौतिक दृष्टि से दया दिखा पाना आपकी शक्ति से परे है।

प्रह्लाद महाराज कहते हैं, "मित्रों! अपना यह आसुरी

जीवन छोड़ दो। इस मूढ़ता को त्याग दो।" यह धारणा की ईश्वर नहीं है, प्रह्लाद महाराज अपने मित्रों से इस आसुरी विचार को त्यागने के लिए कहते हैं। चूँकि प्रह्लाद महाराज के मित्रगण असुर परिवारों में जन्मे थे और आसुरी शिक्षकों से शिक्षा पा रहे थे इसलिए वे सोचते थे, "ईश्वर कौन हैं? ईश्वर नहीं हैं।" हम *भगवद्गीता* में पाते हैं कि इस प्रवृत्ति के लोग दुष्ट कहलाते हैं क्योंकि वे सदैव दुष्टता पर तुले रहते हैं। भले ही वे शिक्षित क्यों न हो किन्तु उनकी योजना ठगने की रहती है। हमें इसका व्यावहारिक अनुभव है। ये लोग उच्च शिक्षा प्राप्त होते हैं और अनेक योग्यताओं से युक्त होते हैं। ये सुन्दर वेशभूषा भी धारण करते हैं किन्तु इनकी मनोवृत्ति निम्न होती है। वे सोचते हैं, "इस व्यक्ति के पास कुछ धन है अतः षड्यन्त्र करके इसे ठग लिया जाये।" वे निरे दुष्ट हैं।

वे किस लिए ठगते हैं? मात्र इन्द्रियतृप्ति के लिए, ठीक उसी तरह जिस तरह कि जीवन का लक्ष्य न जानने वाला एक गधा। धोबी गधे को पालता है और उसकी पीठ पर भारी बोझ लादता है। इस तरह यह गधा दिन-भर इस गठरी को इसलिए लादे रहता है कि उसे थोड़ी घास मिल जायेगी। इसी तरह से भौतिकतावादी लोग केवल तुच्छ इन्द्रियतृप्ति के लिए कठोर

श्रम करते हैं। इसीलिए उनकी उपमा गधों से दी जाती है। वे सदैव किसी न किसी दुष्टता की योजना बनाये रहते हैं। वे मानव जाति में सबसे निम्न होते हैं क्योंकि उन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है। क्यों? क्योंकि उनका ज्ञान भौतिक शक्ति (माया) द्वारा हर लिया गया है। चूँकि वे ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं इसलिए मोह उन्हें प्रेरित करता है कि "सचमुच ही ईश्वर नहीं है। कठिन श्रम करो और पाप करो जिससे नरक जा सको।"

प्रह्लाद महाराज अपने आसुरी मित्रों से अनुरोध करते हैं कि वे यह विचार त्याग दें कि भगवान् नहीं हैं। यदि हम इस व्यर्थ के विचार को त्याग दें तो हमारी अनुभूति से परे रहने वाले परमेश्वर प्रसन्न हो जायेंगे और हम पर दया करेंगे।

लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ६९ वर्ष की अवस्था में सन १९६५ में अपने गुरु महाराज के आदेशानुसार अंग्रेजी भाषी विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए अमरीका गये। बारह वर्षों की अल्प अवधि में उन्होंने वैदिक साहित्य के अंग्रेजी अनुवाद और भाष्य के रूप में ५० से अधिक ग्रंथरत्न प्रस्तुत किये। उनके द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित वैदिक ग्रंथ उनकी अधिकृतता, गहराई व स्पष्टता के कारण विद्वत्समाज में सम्मानप्राप्त तथा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों में मान्यताप्राप्त हैं। इसके साथ साथ ही कृष्णभावनामृत का प्रचार करने हेतु वे सम्पूर्ण विश्व में निरन्तर भ्रमण करते रहे। सन १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना न्यूयॉर्क में की। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ को अपने कुशल निर्देशन से सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, गुरुकुलों एवं कृषि-समुदायों का एक बृहद् संगठन बना दिया। सन् १९७७ में उन्होंने कृष्ण की प्रिय एवं पावन लीलाभूमि वृन्दावन में लौट कर इस धरा-धाम से प्रयाण किया। उनके शिष्यगण उनके द्वारा स्थापित आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं।✳

प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेश

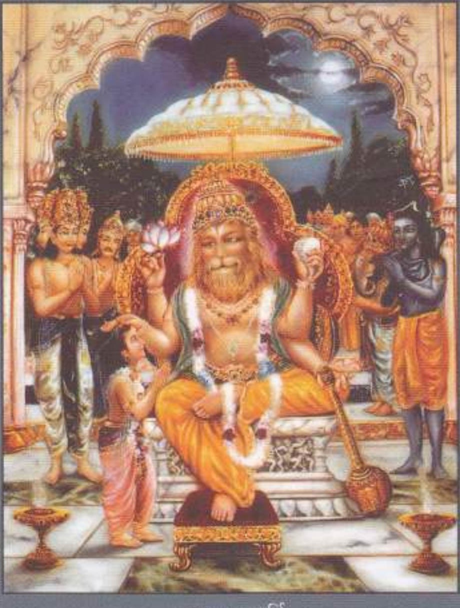

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य–अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ